International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 91-94

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 91-94
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-07-2021
Accepted: 21-08-2021

इन्द्रजीत कुमार
शोध, छात्र संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
इन्द्रजीत कुमार
शोध, छात्र संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

पाणिनि से उत्तरवर्ती व्याकरणों का संक्षिप्त परिचय

इन्द्रजीत कुमार

प्रस्तावना

आचार्य पाणिनि के अनन्तर भी व्याकरण की दिशा में जो नया चिन्तन–क्रम चलता रहा, तत्परिणामस्वरूप जहॉ विविध वैयाकरणों द्वारा पाणिनीय व्याकरण पर अनेक नये विवेचनात्मक ग्रन्थों का निर्माण कार्य किया गया, वहीं अन्य अनेक नये विवेचनात्मक ग्रन्थों का निर्माण कार्य किया गया, वहीं अन्य अनेक वैयाकरणों द्वारा, पाणिनिपूर्वयुग के समान ही नये व्याकरण शास्त्रों का भी सृजन हुआ है। पाणिनीय व्याकरण पर हुए विवेचनात्मक नव निर्माण कार्य का वर्णन करने के पश्चात् उत्तरवर्ती व्याकरणों पर ही दृष्टि जाती है।

आचार्य पाणिनि के बाद में निर्मित सभी उपलब्ध व्याकरणों में दो तथ्य समान रूप से दृष्टिगत होते हैं। प्रथम तो यह है कि उन व्याकरण ग्रन्थों में केवल लौकिक संस्कृत शब्दों का ही अन्वाख्यान है। और दूसरी यह कि उन सब व्याकरणों का मुख्य उपजीव्य पाणिनीय व्याकरण है। एक कातन्त्र व्याकरण ही ऐसा है, जिसका आधार कोई अन्य प्राचीन व्याकरण है।

कातन्त्र व्याकरण

व्याकरण–वांगमय में 'कातन्त्रव्याकरण' का अत्यन्त महत्वपूर्ण सीान है। इसे 'कलापक' औश्र 'कौमार' भी कहते हैं। अर्वाचीन वैयाकरण कलाप शब्द से भी इसका व्यवहार करते हैं। इस व्याकरण में दो भाग हैं। एक आख्यातान्त और दूसरा कृदन्त। दोनों भाग दो भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की रचनाएं हैं।

कातन्त्र शब्द का अर्थ करतें हुए कातन्त्रवृत्ति–टीकाकार दुर्गसिंह आदि वैयाकरण इसका अर्थ 'लघुतन्त्र' करते हैं। उनके मतानुसार ईषत्=लघु अर्थवाची 'कु' शब्द को 'का' आदेश होता है। तदनुसार कातन्त्रव्याकरण किसी बृहत्तन्त्र का लघु या संक्षिप्त रूप दृष्टिगोचर होता है।

कातन्त्र व्याकरण का रचनाकाल अत्यन्त विवादास्पद है। फिर भी उसके कालनिर्णय के लिए उपलब्ध प्रमाणों में कथासरित्सागर (गुणाढय कृत बृहत्कथा का रूपान्तर) के अनुसार शर्ववर्मा ने सातवाहन नृपति को व्याकरण का बोध कराने के लिए कातन्त्र व्याकरण पढ़ाया था। सातवाहन आन्ध्रकुल का व्यक्ति है। आन्ध्रकुल विक्रम संवत से पूर्ववर्ती हैं।[1]

इसी प्रकार से शूद्रकविरचित पद्मप्राभृतक भाण में कातन्त्र का उल्लेख है। यह वही शूद्रक कवि है जिसने मृच्छकटिक नाटक लिखा है। दोनों ग्रन्थों के आरम्भ में शिव की स्तुति और दोनों ग्रन्थों में वर्णनशैली समान है। 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना के अनुसार शूद्रक कवि अनेक विद्याओं में निष्णात अश्वमेधयाजी, शिवभक्त महीपाल थे। आचार्य शूद्रक हालनामा सात वाहन नृपति के समकालीन थे और विक्रम से लगभग 400–500 वर्ष पूर्ववर्ती थे।[2]

कथासरित्सागर और कातन्त्रवृत्ति टीका आदि के अनुसार कातन्त्र व्याकरण के आख्यातान्त भाग का कर्त्ता शर्ववर्मा है।[3] कातन्त्र का वृत्तिकार दुर्गसिंह कृदन्त के आरम्भ में लिखता है कि–

> वृक्षादिवदमी रूढा न कृतिना कृता कृतः।
> कात्यायनेन ते सृष्टा विबुद्धप्रतिपत्तये।।[4]

अर्थात् कातन्त्र का कृदन्त भाग कात्यायन ने बनाया है। कात्यायन नामक अनेक आचार्य हो चुके हैं। दुर्गसिह के लेख से यह स्पष्ट नहीं है कि कृदन्त भाग किस कात्यायन ने बनाया। सम्भव है कि महाराज विक्रम के पुरोहित कात्यायन गोत्रज वररुचि ने कृदन्त भाग की रचना की हो।

जनरल गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट से प्रकाशित एक लेख में कहा है कि ''सातवाहन के चाचा भाववर्मा के 'शंकु' से संक्षिप्त किया ऐन्द्र व्याकरण प्राप्त किया। जिसका प्रथम सूत्र 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'[5] था। यह पन्द्रह पादों में था। इसका संक्षेप वररुचि शर्ववर्मा ने किया। तब इसका नाम 'कलापसूत्र' हुआ। क्योंकि अनेक स्रोतों से इसका संकलन हुआ, उन सूत्रों के मोर की पूंछ के समान विस्तीर्ण होने के कारण ही यह (कलापक) नाम पड़ा। इसमें 25 अध्याय अर्थात् पाद और 400 श्लोक थे।''[6]

इसके आधार पर डा0 सत्यकाम वर्मा का, कृदन्त भाग के रचयिता के विषय में कहना है कि ''इस 'कलापक' में कृदन्त भाग समेत 25 पाद है। इसकी पूर्णता विविध स्रोतों से शर्ववर्मा द्वारा की गयी, जिसका अपर नाम वररुचि भी था। यह भाववर्मा का सम्बन्धी, और कदाचित् सातवाहन नृपति का बन्धु रहा होगा। इसने ही उसे पूर्णता प्रदान की।[7]

अतः स्पष्ट है कि शर्ववर्मा ने सम्पूर्ण कातन्त्र का संक्षेप किया और इसे पूर्ण भी किया। स्वयं वही 'वररुचि' थे, जिन्हें बाद में 'कात्यायन' नाम से भी कह दिया गया। वर्मा जी के कथन से ध्वनित होता है कि कातन्त्र–वृत्तिकार दुर्गसिंह द्वारा कृदन्त के आरम्भ में लिखित 'कात्यायनेन ते सृष्टा विबुधप्रतिपत्तये' वचन में 'कात्यायन' नाम से वररुचि शर्ववर्मा ही अभिप्रेत हैं।

1 चान्द्र व्याकरण

आचार्य चन्द्रगोमी ने पाणिनीय व्याकरण के आधार पर एक नये व्याकरण की रचना की। इनकी रचना से ज्ञात होता है कि इन्होंने पातंजल महाभाष्य से भी पर्याप्त सहायता ली है।

चन्द्रगोमी के वंश का कोई परिचय नहीं प्राप्त होता। चान्द्रव्याकरण के प्रारम्भ में उपलब्ध श्लोक से पता चलता है कि ये बौद्धमतावलम्बी थे।

कल्हण के लेख से इतना ही ज्ञात होता है कि चन्द्राचार्य ने कश्मीर में महाराज अभिमन्यु की आज्ञा से महाभाष्य का प्रचार किया। उससे यह नहीं विदित होता कि चन्द्राचार्य का जन्म भारत के किस प्रान्त में हुआ था। इस विषय पर साक्षात् प्रकाश डालने वाला कोई अन्य प्रमाण भी नहीं मिलता है।

चान्द्रवृत्ति और वामनीय लिंगानुशासन वृत्ति में चान्द्रव्याकरण की विशेषता 'चन्द्रोपज्ञमसंज्ञकं व्याकरणम्' लिखी है। अर्थात् चान्द्रव्याकरण में किसी पारिभाषिक संज्ञा का विधान करना उनकी विशेषता रही है। चन्द्राचार्य ने अपनी स्वोपज्ञवृत्ति के प्रारम्भ में लिखा है कि–

'लघुविस्पष्टसम्पूर्णमुच्यते शब्दलक्षणम्'।

अर्थात् यह व्याकरण पाणिनीय तन्त्र की अपेक्षा लघु और विस्पष्ट एवं कातन्त्र आदि की अपेक्षा सम्पूर्ण हैं।

पाणिनीय व्याकरण में जिन शब्दों के साधुत्व का प्रतिपादन वार्तिकों और महाभाष्य की इष्टियों से किया है, चान्द्राचार्य ने उन पदों का सन्निवेश सूत्रपाठ में कर दिया है। चन्द्राचार्य ने पतंजलि द्वारा प्रत्याख्यात पाणिनीय सूत्रों वा सूत्रांशो को अपने व्याकरण में स्थान नहीं दिया। इसी प्रकार पतंजलि ने पाणिनीय सूत्रों के जिस न्यासान्तर को निर्दोष बताया, चन्द्राचार्य ने प्रायः उसे ही स्वीकार कर लिया। फिर भी आचार्य चन्द्रगोमी ने अनेक स्थानों पर पतंजलि के व्याख्यानों को प्रामाणिक न मान कर अन्य ग्रन्थकारों का आश्रय लिया है ऐसा दृष्टिगत होता है।

इस समय चान्द्रव्याकरण छः अध्यायों में उपलब्ध है। आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक जी कहतें हैं कि ''छठें अध्याय के अन्त में 'समाप्तं चेदं चान्द्रव्याकरणम् शुभम्' पाठ भी उपलब्ध होता है किन्तु इसी से यह समझना कि चान्द्रव्याकरण छः अध्यायों में ही सम्पूर्ण था, महती भूल है। इसमें स्वर प्रक्रिया के दो अध्याय अन्त में अवश्य थे जो आज अनुपलब्ध हैं।''[8] इस प्रकार इस व्याकरण की सम्पूर्ति आठ अध्यायों में हुई थी। किन्तु वर्तमान में इसके छः अध्याय ही प्राप्त होते हैं।

1. जैनेन्द्र व्याकरण

जैनेन्द्र व्याकरण देवनन्दी प्रोक्त है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि देवनन्दी का अपरनाम नाम जिनेन्द्र भी था।

सम्प्रति इस व्याकरण के दो संस्करण उपलब्ध होते हैं। एक औदीच्य, दूसरा दाक्षिणात्य। औदीच्य में लगभग तीन हजार सूत्र हैं जब कि दाक्षिणात्य में सात सौ सूत्र अधिक हैं। उसमें शतशः सूत्रों में परिवर्तन और परिवर्धन भी मिलता है। औदीच्य संस्करण की अभयनन्दी–कृत महावृत्ति में बहुत से वार्तिक मिलते हैं, परन्तु दाक्षिणात्य संस्करण में वे वार्तिक प्रायः सूत्रान्तर्गत हैं। अतः यह विचारणीय हो जाता है कि पूज्यपाद विरचित मूल सूत्र पाठ कौन सा है।

इसका संक्षिप्त विवेचन आचार्यवर की स्वविरचित टीका में प्राप्त होता है। उन्होनें 'प्रमाणनयैरधिगमः'[9] सूत्र में अल्पाच्तर होने से 'नय' शब्द का पूर्व प्रयोग होना चाहिए, ऐसा कहा है, किन्त अभ्यर्हित होने के कारण बह्वच् 'प्रमाण' शब्द का पूर्व प्रयोग किया गया है। जैनेन्द्र व्याकरण के औदीच्य संस्करण में इस प्रकार का कोई सूत्र नहीं है जिससे बह्वच् 'प्रमाण' शब्द का पूर्व निपात हो सके। दाक्षिणात्य संस्करण में इस अर्थ का प्रतिपादक 'अर्च्यम्' सूत्र उपलब्ध होता है। अतः दाक्षिणात्य संस्करण ही पूज्यपाद विरचित है।

जैनेन्द्र व्याकरण का मूख्य आधार पाणिनीय व्याकरण ही दृष्टिगोचर होता है। चान्द्रव्याकरण से भी कहीं–कहीं सहायता ली गयी है। इन दोनों व्याकरणों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मध्यप्रदेश के एक शिलालेख में आचार्य देवनन्दी की प्रशस्ति में लिखा है कि 'न्यासं जैनेन्द्रसंज्ञं सकलबुधनतम्।'[10] इस प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है कि देवनन्दी ने अपने व्याकरण पर जैनेन्द्रसंज्ञक न्यास लिखा था। यह इस समय अनुपलब्ध है।

जैनेन्द्र व्याकरण पर अभयनन्दी ने 'महावृत्ति' लिखी है। उसमें उन्होनें अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया है।

अभयनन्दी कृत महावृत्ति में 'तत्त्वार्थवार्तिकमधीते' उदाहरण दिया है।[11] आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक जी के अनुसार तत्त्वार्थवार्तिक की रचना अकलंक ने वि0 सं0 700 के लगभग की है। यह अभयनन्दी पूर्व सीमा है।[12]

अतः जैनेन्द्र व्याकरण भी कतिपय रूप से पाणिनीय एवं चान्द्रादि व्याकरणों की सहायता से पूर्णता को प्राप्त होता है। इस पर कई टीकाएं भी लिखी गई है। जिनमें स्वविरचित स्वार्थसिद्धि नामक टीका एवं अभयनन्दी कृत महावृत्ति प्रमुख है।

2. शाकटायन व्याकरण

वर्तमान संस्कृत व्याकरण के निकाय में 'शाकटायन व्याकरण' के नाम से जो एकमात्र मुद्रित ग्रन्थ मिलता है, यह उस शाकटायन व्याकरण से सर्वथा भिन्न है, जिसे 'ऋक्प्रातिशाख्य' और यास्क से भी पूर्ववर्ती प्रसिद्धि लौकिक वैयाकरण शाकटायन मुनि ने लिखा था। यह व्याकरण जिस 'शाकटायन' का लिखा है, वह 'महाश्रमणसंघाधिपति' था। अतः नाम–साम्य से भ्रम में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इसके लेखक के विषय में कहा जाता है कि आचार्य पाल्यकीर्ति ने इसकी रचना की थी। किन्तु पाल्यकीर्ति ने अगर इसकी रचना की थी तो शाकटायन कौन है। यह प्रश्न मस्तिष्क को भ्रमित करता है। जिसका निवारण करने का प्रयास पूज्यपाद मीमांसक जी ने अपने 'संस्कृत व्याकरण के इतिहास' में 'शाकटायन' और 'पाल्यकीर्ति' नाम एक ही व्यक्ति के हैं, कहकर किया है।[13]

आचार्य यक्षवर्मा ने अपनी 'चिन्तामणि' वृत्ति में इन तथ्यों को प्रकट किया है। उन्होंने कहा है कि–

महाश्रमणसंघाधिपतिर्यः शाकटायनः।।
सयशश्रि समुद्ददध्रे विश्वं व्याकरणामृतम्।।
स्वल्पग्रन्थं सुखोपायं सम्पूर्णं यदुपक्रमम्।
शब्दानुशासनं सार्वमर्हच्छासनवत्परम्।।

इष्टिर्नेष्टा....यस्य शब्दानुशासने।।
तस्यातिमहतीं वृत्तिं संहृत्येयं लघीयसी।
सम्पूर्णलक्षणा वृत्तिर्वक्ष्यते यक्षवर्मणा।।[14]

अर्थात् ''शाकटायन महाश्रमण संघाधिपति था। उसी ने सम्पूर्ण व्याकरण का समुद्धार किया। यह व्याकरण अत्यन्त संक्षिप्ताकार, सरल औश्र सम्पूर्ण था। उसके व्याकरण में पृथक् से इष्टि, वक्तव्य, गणपाठ आदि को कहने की आवश्यकता और अवकाश नहीं है। उसकी अतिमहती (अमोघा) वृत्ति को संक्षिप्त करके ही यह संक्षिप्ततर किन्तु सम्पूर्णता से युक्त वृत्ति यक्षवर्मा ने रची है।''

अतः शाकटायन व्याकरण के कर्त्ता पाल्यकीर्ति ने स्वयम् 'अमोघावृत्ति' नाम्नी एक महती व्याख्या अपने शब्दानुशासन की रची है। इससका यह नाम पाल्यकीर्ति के आश्रयदाता महाराज अमोघदेव के नाम पर रखा गया है। 'गणरत्नमहोदधि' में शाकटायन के नाम से अनेक ऐसे उद्धरण दिए हैं जो 'अमोघावृत्ति' में ही मिलते हैं। इसी प्रकार यक्षवर्मा विरचित 'चिन्तामणिवृत्ति' के छठें और सातवें श्लोक से स्पष्ट होता है कि 'अमोघावृत्ति' स्वयं सूत्रकार ने रची है। सर्वानन्द ने भी अमरटीकासर्वस्व में अमोघावृत्ति का पाठ पाल्यकीर्ति के नाम से उद्धृत किया है।

5. हेमचन्द्र व्याकरण

श्वेताम्बरसम्प्रदायान्तर्गत वज्र शाखा के आचार्य के शिष्य होने के गौरव को प्राप्त करने वाले श्रीसिद्धहेमचन्द्र का जन्म सं0 1188 वि0 में सौराष्ट्र के वैदिक मतानुयायी ब्राह्मणकुल में हुआ था।[15] पाणिनि की भांति उनके ग्रन्थ में भी आठ अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय में चार–चार पाद हैं। लगभग 4500 सूत्रों में विरचित इस व्याकरण के प्रथम सात अध्यायों में संस्कृत भाषा के तथा अष्टम अध्याय में प्राकृत भाषाओं (शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका और अपभ्रंश) के व्याकरण नियमों को दिया गया है।[16]

अपने से पूर्ववर्ती वैयाकरणों और वृत्तिकारों का नामोल्लेख करने के साथ–साथ श्रीसिद्धहेमचन्द्र उन सभी से प्रभावित रहने की बात स्वीकारते हैं। प. युधिष्ठिर मीमांसक जी के अनुसार जिनकी संख्या लगभग 33 है।[17] सबसे अधिक अनुकरण शाकटायन के शब्दानुशासन की अमोघवृत्ति का किया गया है। इस कारण पूर्ववर्ती वैयाकरणों के व्याकरण नियमों का ही अनुकरण प्रतीत होता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने समस्त मूल ग्रन्थों की स्वयं टीकाएं लिखी हैं। उन्होनें अपने व्याकरण की तीन व्याख्याएं– लघ्वी वृत्ति, मध्य वृत्ति और बृहती वृत्ति के रूप में लिखी है। हैमव्याकरण पर हेमचन्द्र के अतिरिक्त लगभग सत्रह विद्वानों ने टीका टिप्पणी आदि की रचना की। उनके ग्रन्थ प्रायः दुष्प्राप्य और अज्ञात हैं।

6. सारस्वत व्याकरण

श्री अनुभूतिस्वरूपाचार्य का 'सारस्वत व्याकरण' 1250 ई0 से 1450 ई0 के बीच लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण व्याकरण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता इसका 700 सूत्रों में समाविष्ट होना है। यह व्याकरण पाणिनीय परम्परा तथा ऐन्द्र परम्परा दोनों से प्रभावित रहा है।[18] उसके भी वर्णसमाम्नाय, वर्णविभाग, सन्धिप्रकरण, आदि मूलतः इसी परम्परा के रहे हैं। किन्तु एक बात में उसकी पाणिनि से परवर्त्तिता स्पष्ट है। सारस्वतप्रक्रिया के आधार पर पाणिनि–प्रभाव की यह बात अधिकार के साथ कही जा सकती है। कारण यह है कि इसमें पाणिनीय प्रत्याहार–पद्धति का समावेश करने का प्रयास किया गया है। इसमें कुछ परिभाषाएं पाणिनि के अनुकरण पर दृष्टिगत होती हैं। किन्तु दुसरी ओर, सारस्वत व्याकरण में समान, नामिनः, आदि परिभाषाएं एवं सन्धिनियम प्रातिशाख्यों के अनुकरण पर ही प्रयुक्त हुए हैं।[19]

संक्षिप्तता तथा सरलता इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताएं है। अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों से यह ग्रन्थ अधिक सरल है। प्रथम मंगलाचरणात्मक श्लोक इसमें प्रमाण है।[20] सारस्वत व्याकरण प्रत्याहारों का प्रयोग करता है परन्तु पाणिनीय प्रत्याहारों के क्रम से उसमें भिन्नता है।[21] प्रत्याहारों के जो भ्रान्तिकारक चिन्ह हैं, उनका परिहार करता है। उदाहरण रूप में सारस्वत के अनुसार च ट त क प के स्थान पर वे चप् का प्रयोग करते हैं।[22] जिसका परिणाम यह है कि अपनी सुबोधता की रक्षा करते हुए यह व्याकरण वर्णों की मितव्ययिता से अपने आशय को स्पष्ट करता है। इसकी दूसरी विशेषता है कि वैदिक अनियमितताओं तथा स्वरों का परिहार कर दिया गया है। उणादि विवेचन का भी परिहार कर दिया है और सूत्रों का क्रम प्रक्रिया ग्रन्थों के आधार पर किया गया है।[23]

7. सरस्वतीकण्ठाभरण

परमारवंशीय धाराधीश, विज्ञों के आश्रयदाता महाराज भोज संस्कृत भाषा के पुनरुद्धारक के रूप में संस्कृत व्याकरण परम्परा में स्मृत किए गए हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण नाम के दो ग्रन्थ राजा भोज ने लिखे हैं जिनमें एक व्याकरण की परम्परा का पुनरुद्धार करने वाला है तो दूसरा अलंकार शास्त्र का।[24]

सरस्वतीकण्ठाभरण का अध्यायों तथा पादों में विभाजन के समान ही है परन्तु उनकी सूत्र संख्या पाणिनि सूत्र संख्या से अधिक है। इसका कारण यही लगता है कि धातुपाठ को छोडकर शेष परिभाषापाठ, गणपाठ और उणादि सूत्रों का समावेश भी इस शब्दानुशासन में कर दिया गया है। इस कारण इनका ग्रन्थ पूर्ववर्तियों का अनुकरण होते हुए भी नवीनता सी लिए हुए दृष्टिगोचर होता है। इसके प्रथम सात अध्यायों में लौकिक तथा अष्टम अध्याय में वैदिक स्वर प्रक्रिया के नियम प्रस्तुत किए गए हैं।[25]

8. बोपदेव का शब्दानुशासन

बोपदेव ने पाणिनि के प्रत्याहार सूत्रों को तथा पारिभाषिक शब्दों को आवश्यकतानुसार परिवर्तन तथा परिवर्धन के साथ अपनाया है।[26] इसकी अन्य विशेषता है कि मुग्धबोध में धार्मिक तत्त्वों का समावेश उदाहरणों में किया गया है।[27] डॉ0 बेल्वेल्कर के अनुसार सम्भवतः इन्हीं कारणों से बोपदेव का मुग्धबोध लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सका। इतना ही नहीं इनके प्रत्याहार, समाहार आदि पाणिनि अध्येता को भ्रम में डाल देने वाले हैं।[28] इस व्याकरण का प्रचलन बंगाल में अधिक रहा है।

अन्य परवर्ती प्रवक्ताओं में रामसूरि, वेंकटरंग और नवकिशोर शास्त्री आदि का नाम लिया जा सकता है।

इस प्रकार पाणिनि काल से व्याकरण का निर्धारण पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती के रूप में अनेक वैयाकरण प्राप्त होते हैं। जिससे संस्कृत भाषा का शुद्ध एवं परिष्कृत रूप वर्तमान में भी अपने स्वरूप को तटस्थ बनाए हुए है।

सन्दर्भ

1. पं0 भगवद्दत्त जी कृत भारत वर्ष का इतिहास द्वि0 संस्करण।
2. पं0 भगवद्दत्त जी कृत भारत वर्ष का इतिहास द्वि0 संस्करण। पृष्ठ 291–306
3. तन्त्र भगवत्कुमारप्रणीत सूत्रानन्तरं तदाज्ञयैव श्रीशर्ववर्मणा प्रणीतं सूत्रं कथमनर्थकं भवति। परिशिष्ट, 469
4. कातन्त्रवृत्ति टीकाकार दुर्गसिंह द्वारा कृदन्त के आरम्भ उद्धृत।
5. ऐन्द्र व्याकरण प्रथम सूत्र
6. जनरल गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट से प्रकाशित तिब्बतीयों ग्रन्थों के आधार पर एक लेख भाग 1, अंक 4 में।
7. संस्कृत व्याकरण का उद्भव एवं विकास पृ0 384–49
8. आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक कृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ0 216
9. जैनेन्द्रव्याकरण, सर्वार्थसिद्धि टीका, तत्त्वार्थ सूत्र 1.6
10. मध्यप्रदेश स्थित शिमोगा शिलालेख की देवनन्दी प्रशस्ति से उद्धृत।
11. अभयनन्दी कृत महावृत्ति 3.2.55
12. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ0 222

13. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ0 225
14. यक्षवर्मा कृत चिन्तामणि, श्लोक सं0 3–7
15. प. युधिष्ठिर मीमांसक स0 व्या0 शा0 इ0, पृ0 235
16. हेमचन्द्र कृत व्याकरण, विषयसूची से
17. सं0 व्या0 शा0 इ0, पृ0 567
18. सत्यकाम वर्मा, सं0 व्या0 उ0 वि0 389
19. डा0 लज्जा पन्त, सारस्वत व्याकरण, पृ0 17
20. प्रणम्य परमात्मानं बालधीवृद्धिसिद्धये।
21. सारस्वतीभृजु कुर्वे प्रक्रियां नातिविस्तराम्।। सारस्वत, 1., पृ0 1
22. सारस्वत व्याकरण, संज्ञाप्रकरण, पृ0 17
23. च ट त क प इति चप प्रत्याहारा। सारस्वत व्याकरण, पृ0 18
24. विषयसूची, वही, पृ0 1–171 एवं 1–313
25. सत्यकाम वर्मा, सं0 व्या0 उ0 वि0, पृ0 381–382
26. सत्यकाम वर्मा, सं0 व्या0 उ0 वि0, पृ0 605–609
27. भारतीय प्रज्ञा, पृ0 172
28. यथा सवर्ण सन्धि के उदाहरण के रूप में मुरारि, लक्ष्मीश, विष्णूत्सव इत्यादि, उद्धृत S.S.G.P.84
29. यथा सवर्ण सन्धि के उदाहरण के रूप में मुरारि, लक्ष्मीश, विष्णूत्सव इत्यादि, उद्धृत S.S.G.P. पृ0 89